वर्ष ६, अंक ६

श्रीकृष्णाय नमः

अप्रैल

चैत्र १९९१

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

विषय सूची

नं०	लेख / लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश	१५५
२.	पुराण गाथा [ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी	१५९
३.	काल [ले० श्री पं० रघुनाथ जी स्वामी	१६०
४.	पात्र परीक्षा [ले० श्री केसरीमल अग्रवाल	१६३
५.	योग-साधन [ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती	१६५
६.	कल्याण बसन्त (कविता) [ले० श्री आचार्य अनन्त लाल गोस्वामी द्वारा प्राप्त ...	१६६
७.	पद प्रमाण संग्रह [ले० श्री महात्मा राम आश्रम	१७०
८.	वेदान्त की मुनादी (कविता) [ले० श्री यमुना प्रसाद जी वास्तव	१७२
९.	दृष्टांत [ले० मधुकर जी ब्रह्मचारी 'विशारद' आश्रम	१७४
१०.	वर्षा (कविता) [संकलित श्री नन्दकुमार शर्मा 'विशारद'	१७५
११.	श्री अरविन्द घोष	१७६
१२.	ऋषियों का साहित्य [ले० श्री बी. एल. सराफ, बी. ए., एल एल. बी.	१७८
१३.	भजन [संग्रहकर्ता—श्री केशवदेवजी ब्रह्मचारी "आश्रम"	१८६

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना, वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटा व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस से पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये; जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक और सहायक

राव श्रीराम जी रईस नांगल	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१२१)
डा० गोपालदास जी रईस लाहौर	१११)
धर्मसिंह भावजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया	१२०)
आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सैल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१०१,
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	१०१)
श्रीमती रानी निहालकौर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ० बी० ई० रामपुरा	५१)
चौधरी शिवसहाय जी कोसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
डाक्टर झवेरभाई नारायणभाई देसाई मघुवा जिला कैरा	२५)
पण्डित पन्नालाल जी तोपखाना नं० ५ अम्बाला	२५)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली	१५)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	५)
सूबेदार मेजर दीपचन्द जी	५)
मंगलसिंह गनर नं० ५ तोपखाना अम्बाला	

पुष्पकारूढ राम

बीती अवधि अपार, अति उतलुक पुरजन सकल।
आवत अवध-अधार, चढ़ि पुष्पक दलबलसहित॥

GITA-PRESS, GORAKHPUR.

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ८ | श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, मार्गशीर्ष, ता० १ अप्रेल, १९३५ | अंक ६ पूर्ण संख्या १०२

वेदोपदेश

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य सं सख्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥

हम पूजनीय और सर्व-भूतज्ञ अग्नि के रथ की तरह, बुद्धि द्वारा, इस स्तुति को प्रस्तुत करते हैं। अग्नि की अर्चना से हमारी बुद्धि उत्कृष्ट होती है। हे अग्नि, तुम्हारे हमारे मित्र रहने पर हम हिंसित नहीं होंगे।

यस्मै त्वमायजसे स साधत्यनर्वा क्षेति दधते सुवीर्यम् ।
स तूताव नैनमश्नोत्यंहतिरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥

अग्नि, जिसके लिये तुम यज्ञ करते हो, उसकी अभिलाषा पूर्ण होती है और वह उत्पीडित न होकर निवास करता, महाशक्ति धारण करता और वर्द्धित होता है। उसे कभी दरिद्रता नहीं मिलती। हे अग्नि, तुम्हारे बन्धु होने पर हम हिंसित नहीं होंगे।

पुराण-गाथा

प्रल्हाद के मारने का प्रयोग तथा बन्धन

[ले०-श्री पूज्य भोले बाबाजी]

नारद-हे शौनक ! विषयासक्त पुरुषों को विषय भोग की बातें रुचती हैं, भोजनासक्त पुरुषों को चटपटे भोजनों का वर्णन करना और खाना अच्छा लगता है, भगवद्भक्त के मन को भगवत् की कथा सुहानी लगती है, योगी की अष्टांग योग में प्रीति होती है, ज्ञानी को आरोप अपवाद के द्वारा तत्व का निरूपण करना भाता है। सारांश यह है कि सबको अपने अनुकूल विषय में रुचि और प्रतिकूल विषय में अरुचि होती है। दैत्येन्द्र को अपने विपक्षी विष्णु की प्रशंसा अच्छी नहीं लगी, प्रल्हाद के वचन सुनकर उसे क्रोध आगया, क्रोध में भरकर उसने सुशील और भगवद्भक्त अपने पुत्र को गोदी में से पृथिवी के ऊपर पटक दिया और आंखें लाल२ करके दैत्यों से कहने लगा-

हिरण्यकशिपु-हे दैत्यो ! इसको बांधलो, शीघ्र ही बांधलो, यह बांधने के योग्य ही है, यह मेरा पुत्र नहीं है किंतु मेरे भाई को मारने वाला मेरा शत्रु है, क्योंकि यह अधम अपने सुहृद् बांधवों को त्याग कर अपने चाचा के वध करने वाले विष्णु के पादों का दास के समान अर्चन करता है, अभी तो यह पांच वर्ष का ही है, जब इस पांच वर्ष के बालक ने ही अपने पिता की प्रीति को, जिसको कोई त्याग नहीं सका, त्याग दिया है, तो यह अयोग्य बालक विष्णु का भी क्या भला करेगा ? कुछ भला नहीं करेगा ! एक दिन विष्णु को भी यह त्याग देगा, क्योंकि उसका निश्चय दृढ़ नहीं है, इसलिये इसको बांधलो और किसी दूर देश में लेजाकर छोड़दो ! जैसे वनमें उत्पन्न हुई औषधि हितकर होती है और अपने देह से उत्पन्न हुआ रोग अहितकर होता है, इसी प्रकार दूसरे का पुत्र भी हितकर होता है और अपना पुत्र अहितकर होता है, इसी प्रकार मेरा पुत्र होकर भी यह मेरा अहितकर है, इसलिये त्याज्य है, यह तो पुत्र ही है चतुर पुरुष अपने अहित करने वाले अंग को भी कटवा देते हैं, क्योंकि उसके काटने से शेष अंग निरोग रहते हैं और न कटवाने से सब अंगों में रोग प्रवेश करजाता है, इसलिये उस अंगका काट देना ही श्रेष्ठ होता है, इसी प्रकार इसका त्याग देना ही उचित है। और भी विद्वानों का वचन है कि देश के हित के लिये जाति को त्याग देवे, जाति के हितके लिये कुल को त्याग देवे, कुल के हित के लिये एक को त्याग देवे और और अपने हित के लिये सबको त्याग देवे। निकाल देने से भी संभव है कि यह फिर लौट आवे, इस लिये भोजन में विष

देकर हिंसक पशुओं के वनमें खुलाकर, अग्नि में बैठाकर, पर्वत से गिराकर अथवा अन्य किसी उपाय से उसको मार डालना चाहिये, क्योंकि यह मेरा शत्रु है, घर में रहने वाला, मित्र का स्वरूप धारण करने वाला शत्रु है। जैसे मुनि को दुष्ट इन्द्रियां शत्रु होती हैं, इसी प्रकार यह मेरा शत्रु है, इसका तो जैसे बने, वैसे मार देना ही श्रेष्ठ है, इसलिये जिस उपाय से हो सके, उसी उपाय से तुम इसका वध करदो !

हे शौनक ! अपने स्वामी की उस प्रकार की आज्ञा पाकर तीक्ष्ण डाढों वाले, विकराल मुख वाले लाल मूछों और रोंग वाले वे दैत्य हाथों में त्रिशूल लेकर भयंकर नाद करते हुए 'छेद डालो, भेदडालो, मारदो' ऐसा कहते हुए शूलों से मर्म स्थानों में प्रह्लाद को मारने लगे परन्तु जैसे पुण्य रहित पुरुष जितने उद्यम करता है, उसके उतने सब उद्यम निष्फल जाते हैं, इसी प्रकार उन दैत्यों के प्रह्लाद के ऊपर चलाये हुए सब हथियार निष्फल हुये, क्योंकि वह तो निष्फल निरंजन परमात्मा में मन लगाये हुये था, भला समस्त शक्ति वाले परमेश्वर में मन लगाने वाले के ऊपर कोई हथियार कैसे चला सकता है ? नहीं चल सका ! हे शौनक ! बात यह है कि जो सर्व शक्तिमान पर ब्रह्म में मन को लगाता है उसको सर्व शक्तियां स्वयं ही सिद्ध हो जाती हैं और सर्व प्रकार उसकी रक्षा करती हैं, ऐसे भगवान् के भक्त पर किसी का किया हुआ अभिचार नहीं चलता । जब दैत्यों ने प्रह्लाद पर हथियार चलाये तो ईश्वर की जिस शक्ति ने वज्र को कठिन बनादिया है, उसी शक्ति ने प्रह्लाद के शरीर को वज्र के समान कठिन बनादिया, इसलिये उसके शरीर को हथियार भेदन नहीं कर सके, अथवा ईश्वर की जो शक्ति सबको नियम में रखती है, उस शक्ति ने राक्षसों की भुजाओं को रोककर चलने ही नहीं दिया। जब हाथ ही न चलें, तब हथियार तो चलें ही कहां से इसलिये सब हथियार निष्फल गये, किसी ने कुछ काम नहीं दिया !

हे शौनक ! जब दैत्येन्द्र का प्रयास निष्फल हुआ, तो उसने उसके मारने के और भी उपाय किये, दिग्गजों से कटवाना, सर्पों से कटवाना, अभिचार करना, पर्वतों से गिराना, मंत्र तंत्र करना कोठी आदि में बन्द कर देना, विष देना, भूखा रखना, बर्फ में डाल देना, वायु में बैठा देना, अग्नि में जलाना, जल में डुबाना, पर्वतों के ऊपर फेंक देना, इत्यादि अनेक उपाय करने पर भी वह असुर पुत्र के मारने को समर्थ न हुआ ! जब हाथियों के सामने फेंका गया, तो भगवान् ने अपनी दया शक्ति द्वारा हाथी में प्रवेश करके सूंड से उसे उठा कर अपनी पीठ पर चढ़ा लिया, जब सर्पों को उसके काटने के लिये छोड़ा गया, तो भगवान् ने गारुडी मंत्र द्वारा सर्पों में प्रवेश कर उनको कील दिया, किले हुए सर्प चूहों के समान उसके सामने क्रीड़ा करने लगे, किसी ने उसे नहीं काटा ! जब उसके ऊपर अभिचार कराये गये, तो जैसे अम्बरीष के ऊपर दुर्वासा की छोड़ी हुई कृत्या को सुदर्शन ने ने भस्म कर दिया था, इसी प्रकार भगवान् के सुदर्शन चक्र ने उनको निस्तेज कर दिया। जब उसे पर्वत के ऊपर से गिराया गया, तो भगवान् ने अपनी लघिमा शक्ति द्वारा उसमें प्रवेश करके उसे रुई के समान हलका कर दिया, जिस से वह फूल के समान पृथिवी पर आगया और कहीं भी किंचित् भी उसके चोट नहीं लगी। जब उसके ऊपर मंत्र

तंत्र चलाये गये, तो वे भी सुदर्शन के प्रभाव से शक्तिहीन होगये ! जब उसे कोठी में बन्द किया गया, तो भगवान् ने वायु द्वारा कोठी में प्रवेश करके उसकी सांस को रुकने नहीं दिया। जब उसे विष पिलाया गया, तो भगवान् ने जैसे रुद्र ने काल-कूट विषको पीलिया था, इसी प्रकार उस विषको पीलिया ! जब उसे भोजन नहीं दिया गया, तो भगवान् ने कूपकंठ में प्रवेश करके उसकी क्षुधा पिपासा को रोक दिया, बहुत दिनों तक उसे भूख प्यास लगी ही नहीं ! जब बर्फ में डाला गया, तो भगवान् ने सूर्यशक्ति द्वारा बर्फ में प्रवेश करके बर्फ को गुनगुना जल बना दिया, उस जल में स्नान करके प्रल्हाद पूर्व से भी अधिक शुचि होकर निकल आया ! जब उसे वायु में बैठा दिया, तो भगवान् ने मरुद्गण होकर उसमें प्रवेश कर उसे इतना सुख दिया, जितना कि शीतल मंद, सुगंधित वायु से हम सबको आनन्द होता है। जब वह अग्नि में डाला गया, तो भगवान् ने चन्द्र होकर उस अग्नि को शीतल कर दिया ! जब वह जल में डुबोया गया तो भगवान् ने अपनी कठिन शक्ति से जलको थल बना दिया और वह उसके ऊपर सफेद संगमरमर के फर्श के समान दौड़ने लगा ! जब वह पर्वतों के ऊपर फेंका गया, तो भगवान् ने अपनी द्रव शक्ति से पर्वत को जलके समान बना दिया और वह उस में बड़े आनन्द से तैरने लगा। इस प्रकार दैत्यराज के अपने भगवद्भक्त पुत्र के मारने को किये हुए सब उद्यम निष्फल चले गये।

हे शौनक ! जीव ईश्वर का अंश अथवा आत्मा है, इसलिये ईश्वर को जीव इतना प्यारा है कि जीव कितने ही पाप करे, तो भी ईश्वर उसको त्यागता नहीं है किंतु सर्वदा उसका हित ही करता रहता है, इसीलिये ईश्वर को वेदवेत्ता दयालु कहते हैं, विद्वानों का यह जो कथन है कि करोड़ों जन्म तक भी जीव के किये हुए कर्म नष्ट नहीं होते किंतु भोगने ही पड़ते हैं। विद्वानों का यह वचन अभगवद्भक्तों के संबंध में हैं, भगवद्भक्तों के संबंध में नहीं है, भगवद्भक्त के तो करोड़ों जन्मों के किये हुए पाप भगवत् के संमुख होते ही नष्ट होजाते हैं। इसमें भगवान् का वचन ही प्रमाण है। भगवान् ने रामायण में कहा है कि जो जीव एकबार भी 'मैं आपका हूं' ऐसा कहकर मेरे शरण की याचना करता है यानी मेरे शरण में आता है, मैं उसे सर्व भूतों से अभय देता हूं, यह मेरी प्रतिज्ञा है। और भी कहा है कि--

संमुख होय जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासों तबहीं ॥

गीता में भगवान् का वचन है कि 'जो अनन्य चित्त होकर मेरी उपासना करते हैं, उनका योगक्षेम मैं वहन करता हूं यानी उनके योगक्षेम का बोझा मेरे सिरपर है'। भगवान् के इन वचनों से सिद्ध है कि भगवान् सर्वदा जीव के साथ हैं और परम सुहृद हैं, जो जो उनकि शरण लाता है, भगवान् उसको तुरत ही सर्व से अभय करते हैं, ऐसा जान कर भी दुर्भाग्य मनुष्य भगवान् में प्रीति नहीं करता किंतु स्त्री, पुत्र, धन, धाम में ही आसक्त रहता है, ऐसा पुरुष कभी सुखी नहीं होता, जहां जाता है, वहां दुख ही पाता है, सुख नहीं पाता और जो भाग्यवान् स्त्री पुरुष ईश्वर की शरण लेते हैं, उनको न तो यहां प्रल्हाद के समान भय होता है और न परलोक का भय होता है, क्योंकि वे तो सर्वत्र, सर्वदा अपने आत्मा ईश्वर को ही देखते हैं। ऐसे पुरुषों का जीवन ही सफल है, जीने को तो वृक्ष भी जीते हैं, सांस लेने को तो धौंकनी भी सांस लेती है और खाना, पीना,

सोना आदि तो सब पशु भी करते ही हैं, यदि इतना ही किया, तो मनुष्य जन्म का फल ही क्या हुआ ? कुछ भी नहीं हुआ।

हे शौनक ! जब सामन्य भक्तों की रक्षा करने को जनार्दन भगवान् सर्वदा उद्यत रहते हैं, तो प्रल्हाद तो केशव भगवान्का अनन्य भक्त था, उसकी रक्षा क्यों नहीं करते ? जब अनेक उपाय करने पर भी हिरण्यकशिपु पुत्र को मारने को अथवा उसे भगवान् की भक्ति से विमुख करने को समर्थ न हुवा तो वह अपने मन में बहुत ही चिंतातुर होता हुआ इस प्रकार विचारने लगा।

हिरण्यकशिपु-(मनमें) ओहो ! यह बालक आश्चर्य रूप है, पांच वर्ष का है, फिर भी अपने निश्चय में अटल है ! मैं ने इससे बहुत से कुवच न कहे, इसके मारने के अनेक उपाय किये परन्तु मेरे उन द्रोहों से और असद्धर्मों से यह अपने तेज से ही बचा रहा ! यह मेरे समीप ही है और बालक भी है, फिर भी यह निर्भय चित्त वाला है, इसलिये जैसे कुत्ते की पूछ बारह वर्ष तक दबाये रखने पर भी टेढी ही रहती है, इसी प्रकार यह अपने स्वभाव को नहीं बदलता ! इसका प्रभाव अतोल है, जानने में नहीं आता, यह किसी से भय नहीं करता और अमर है, निश्चय इसके साथ विरोध करने से ही मेरा मृत्यु होगा, यदि इससे न हुआ, तो अन्य किसी से होगा भी नहीं।

हे शौनक ! इस प्रकार चिन्ता करने से उसके मुख की शोभा कुछ बिगड़ गयी और मुख नीचे को होगया, ऐसा देख कर शुक्राचार्य के पुत्र शंडामर्क एकान्त में उससे इस प्रकार कहने लगे-

शंडामर्क-हे दैत्यपते ! आपके भ्रकुटी घुमाने से समस्त लोकपाल भय खाते हैं, आप अकेले ने ही तीनों लोकों को जीत लिया है, ऐसे आप पराक्रम वाले को चिन्ता करनी योग्य नहीं है। बालक के गुण दोष कुछ काल में बदल जाते हैं, यानी बड़े होने पर बालकपन के गुण दोष नहीं रहते, गुण दोष होजाते हैं और दोष गुण होजाते हैं, बहुत से बालकपन में सरल स्वभाव वाले होते हैं और बड़े होने पर तीक्ष्ण स्वभाव वाले होजाते हैं और बहुत से बालकपन में तीक्ष्ण स्वभाव वाले होते हैं और बड़े होने पर सरल स्वभाव वाले होजाते हैं, इसलिये बालक के दोषों का विचार करके आपको चिंतातुर न होना चाहिये।

हे आर्य ! बालकों की बुद्धि उमर पाकर बदल जाती, इसलिये इस बालक को वरुण के पाशों से बांधकर रखिये, जिससे कि यह भयभीत होकर भाग न जाय। थोड़े दिनों में गुरु शुक्राचार्य आने वाले हैं, जब वे आजायेंगे, तब वे इसको किसी युक्ति से समझा कर अथवा धमका कर सीधे मार्ग पर लेआवेंगे।

गुरुपुत्रों के ऐसा कहने पर हिरण्यकशिपु इस प्रकार कहने लगा।

हिरण्यकशिपु-हे गुरुपुत्रो ! ठीक है, जबतक गुरु आवें तबतक तुमभी इसको गृहस्थ राजाओं के जो धर्म हैं उनका इसको उपदेश करो।

दैत्यराज की आज्ञा स्वीकार करके गुरुपुत्र प्रल्हाद को फिर भी धर्म अर्थ और काम के निरूपण करने वाले ग्रन्थ पढाने लगे परन्तु प्रल्हाद ने उनकी शिक्षा को साधु यानी ठीक न माना क्योंकि उसके उपदेश राग द्वेषादि द्वन्द्वों से युक्त थे और प्रल्हाद निर्द्वन्द्व था, इसलिये जैसे पश्चिम को जाने वाला पूर्व को जाने वाले के बताये हुए मार्ग पर नहीं चलता, इसी प्रकार मोक्षमार्ग गामी प्रल्हाद ने धर्म अर्थ, काम के मार्ग में जाने वाले गुरुपुत्रों का उपदेश उत्तम नहीं माना ! आप ही उसने नहीं माना

हो, इतना ही नहीं, एक दिन जब गुरु किसी कार्य वश बाहर चले गये, तो उसने अवकाश पाकर मधुर स्निग्ध वाणी से अपने सहपाठियों को अपने पास बुलाया और और अपना उपदेश देना आरंभ किया बालक निर्दोष बुद्धि वाले होते हैं। सब उसके पास उसका व्याख्यान सुनने को आगये और वह उन्हें इस प्रकार शिक्षा देने लगा।

पाठक ! प्रल्हाद की शिक्षा बहुत ही रोचक और हितकर है, उसको आगे के लेख में दिखाने का प्रयत्न करेंगे, अभी तो मात्र इतना ही ही कहना है।

दोहा—कथा पढ़ो प्रल्हाद की, सादर चित्त लगाय।
भगवत् आवें चित्त में, शोक मोह भय जाय॥'

काल

[ले०-श्री पं० रघुनाथजी स्वामी]

ॐ यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥
(अथर्व वेद का० १० प्रपाठक २३ अ० ४)

(यो) जो परमेश्वर (भूत) अतीत काल जो व्यतीत होगया है (च) और जो वर्तमान काल है (भव्यं) और तीसरा भविष्यत् अर्थात् होने वाला काल है उन सबको और उन के व्यवहारों को यथावत् जानता है। (यः) जो परमेश्वर (सर्वं) सबको (अधितिष्ठति), अध्यारोप से अध्यन कल्पना कर सर्व के अधिष्ठान रूप से अर्थात् अधिष्ठता रूप से स्वामी है (च) और (यस्य) जिसका (स्व) सुख ही (केवलं) केवल स्वरूप है (तस्मै) उस अपार सुख स्वरूप अपने आपे (ज्येष्ठाय) सबसे बड़े महान् ब्रह्म (ब्राह्मणे) परमानन्द स्वरूप के लिये (नमः) हमारा नमस्कार हो।

इस मन्त्र में भूत भविष्यत् वर्तमान आदि अवयवों से युक्त काल पुरुष का पूर्व वर्णन करते हुए परमेश्वर की महती महिमा से महान् शुद्ध ब्रह्म की भक्ति और प्रेम से आत्म समर्पण नमस्कारों द्वारा पूजा विधान की है, मनुष्य को प्रथम काल का ज्ञान अत्यन्त आवश्यकीय है, जैसा अथर्व वेद में लिखा है:-

काले मनः काले प्राणः, काले नाम समाहितम्।
कालेन सर्वा नन्दन्ति आगतेन प्रजा इमा॥

काल ही में मनुष्य को ज्ञान होता है अथवा मन क्रिया करता है, काल ही में पुरुष का प्राण अर्थात् जीवन पवित्र होता है और काल ही में पुरुष की कीर्ति अर्थात् नाम का यश अटल होता

है। अथवा मन किया करता है, काल ही में पुरुष का प्राण अर्थात् जीवन पवित्र होता है। और काल ही में पुरुष की कीर्ति अर्थात् नाम का यश अटल होता है जिसप्रकार श्रीराम का। आई हुई प्रजा काल ही का आदर कर किन्तु समय को व्यर्थ कार्यों में न गवांकर समय की सार जानकर अनन्य भगवद्भक्ति द्वारा परमनन्द मोक्ष को प्राप्त होती है, जैसा कि वेद में परमेश्वर उपदेश देते हैं:-

कालो अश्वो वहति सप्त रश्मिः सहस्राक्ष अजरो भूरि रेताः
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितः तस्य चक्राभुवनानि विश्वा॥

काल रूपी घोड़ा जिसकी सप्तरश्मि हैं सहस्रों नेत्र हैं जो कभी बूढ़ा नहीं होता जिसकी बहुत बड़ी है वह सबको उठाये लिये जाता है ज्ञानी विद्वान् उसपर सवार होते हैं अर्थात् काल को जीत लेते हैं उसके रथ के पहिये सारे भुवन हैं और भी वेद भगवान् कहता है:-

सप्त चक्रान् वहति कालेष सप्तास्य नाभि रमृतंन्वक्ष।
स इमा विश्वा भुवनाऽयञ्जत कालः स ईयते प्रथमोऽनुदेव

'सप्तचक्रान्' सात चक्रों को अर्थात् सप्त दिवसों को (वहति) उठाये हुए है (एष) यह (कालः) काल (सप्त) सात (अस्य) इसकी (नाभि) नाभि हैं (अमृत) अमर अमृत (नु) निश्चय करके (अक्ष) व्यापक नेत्र है जो सर्व प्राणियों के पाप पुण्य को देखता है (सः) यह (इमा) इन (विश्वा) सारे (भुवनों) को अर्थात् ब्रह्माण्डों को (अञ्जत) व्यक्त करता हुआ (प्रथमः) पहला (देवः) देव (सः) वह (कालः) काल (ईयते), चला जा रहा है, पकड़ो समय को व्यर्थ न जाने दो।

"काल्ह सो काम भजले सो राम"।
फिर पीछे पछतायगा प्राण जायंगे छूट।
श्वास श्वास में जात हैं तिरलोकी का मूल॥

इन वचनों के अनुसार समय बहुत अमूल्य है जैसा कि इस कवित्त में कहा है:-

एक श्वांस खाली मत खोय लो खलक बीच,
कीचक कलंक अङ्ग धोयके तो धोयले।
उर अन्धियार पाप पूर सों भरयो है ताके,
ज्ञान की चिराग चित्त जोयके तो जोय ले॥
मानुष जन्म बार बार न मिलेंगे मूढ़,
पूर्ण प्रभु से प्यारो होयके तो होयले।
देह क्षण भङ्गुर या मे जन्म सुधार वो सो,
बीजके हमके मोती पोयले तो पोयले॥१॥

काले भूमि मसृजत काले तपति सूर्यः।
कालेह विश्वा भूतानि काले चक्षु विपश्यति॥

समस्त लोकों को ब्रह्म के द्वारा जीत कर यह परम देव काल चला जा रहा है, जाने न दो नहीं तो नर्क में महान् दुःख उठाना पड़ेगा और पछताना ही शेष रह जायगा, जैसा कि दृष्टान्त द्वारा विस्पष्ट वर्णन किया है, पाठकगण दत्तचित्त होकर पढ़ें कि कैसे एक दरिद्र पारस मणि को गवां कर पछताता रहा। एक ग्राम में एक क्षुधातुर दरिद्र पुरुष इतस्ततः भ्रमण करता था कि इतने ही में एक महात्मा मिले और उन्होंने कहा कि बच्चा यह पारस मणि है इस को ग्रहण कर, जितने लोहे से इसको लगादेगा तब सब ही सुवर्ण होकर तुम्हारे दुःख को उच्छेद कर यथेच्छ धन प्राप्त होजावेगा। परन्तु यह सब कार्य एक पक्ष के भीतर ही कर लेना। पन्द्रह दिनके अन्त में सूर्यास्त समय मैं आकर यह ले लूंगा। वह पुरुष अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने गृह में आकर लगा सोचने और देखने। तो खुरपी तवा, फूटी कड़ाई आदि अनुमानिक तीन चार सेर लोहा विदित कर पराय वीथिका अर्थात् बाजार को चल दिया, कि देखें तो सही लोहे का क्या भाव है। देखा

विदित हुआ बड़ा महँगा है। दुर्भाग्य से यह उच्चार उत्पन्न हुआ कि अबतो गृह के लोहे को बेचकर जो कुछ रुपये पैसे हों उनसे सस्ता लोहा हो तब खरीदना चाहिये। यह विचार कर घरके लोहे को भी बेचदिया और लगा समय की प्रतीक्षा करने कि कब सस्ता लोहा हो और पारसमणि से लगाकर धनाढ्य होऊं। अभी दिनतो कितने ही शेष हैं। अब सस्ता होवे अब सस्ता होवे परन्तु वह तो महँगा ही होता गया, 'अन्तिम समय आगया और महात्मा ने आकर हाथ पकड़ लिया लाओ हमारी पारसमणि! फिर क्या था ऊपर के श्वास ऊपर नीचे के नीचे, काटो तो रक्त का पता नहीं अन्तिम हाय एक घड़ी को ही देदो एक सुई से तो लगालूं। आवाज़ आई नहीं नहीं! दरिद्र विकराल कालने आकर दो मुद्गर लगा कर प्राणों को गवांकर परमेश्वर रूपी सुख से वञ्चित कर दिया। यही दशा हम लोगों की है कि अमूल्य मनुष्य रूपी जन्म को प्राप्त हो, काल की सार न जान कर अपने पूर्वार्जित शुभ कर्मों को भी गवांकर, संसार रूपी बाज़ार में बेचकर, मनुष्य रूपी जन्म के समय को ईश्वरार्पण परोपकार में न लगा कर दुःख रूपी कारागार में सदैव के लिये बन्धन को प्राप्त होजाते हैं। इसलिये वाद विवाद छोड़ कर ईश्वर भक्ति करो, फल खाओ यह न पूछो कि वृक्ष कब लगा और किसका है नहीं तो समय व्यर्थ चला जायगा और भूखे के भूखे रह जाओगे। जैसा कि एक दिन दो पथिक 'चन्द्रपुर, को जारहे थे जहां परम सुख और उत्तर में अमर फलों का बाग 'विश्वेश्वर नाथ' महा देव मंदिर इत्यादि आनन्दों से और महात्मा सज्जन जनों से परिपूरित ऐसे परम पवित्र वैकुण्ठ रूपी परमेश्वर के परम धाम को जारहे थे कि मध्य में क्षुधा ने अत्यन्त व्यथित करदिये। तब घबराने लगे कि हाय अब भोजन मिले तो मार्ग समाप्त हो। इतने में एक महात्मा बोले कि जाओ समीप ही यह वाटिका है, एक प्रहर के भीतर माली से मिलकर फल खा लेना और कोई बात न करना। वे महात्मा के निर्दिष्ट आराम में प्रविष्ट हुए उनमें एकतो आजकल की सी रोशनी वाला मन्तकी था, और दूसरा पुराने विचारों का भोला भाला विश्वासी था। वह तो जाते ही फल खाने लगा और दूसरा पूछने लगा कि यह बाग किसका है, क्यों लगाया है, क्या पैदावारी है, यह वृक्ष कितने दिनसे लगाया है, यह किसका है? इत्यादि बखेड़े में फंस गया और समय उसका चला गया। दोनों को धक्का दे बाहर किया जो फल खाकर तृप्त था वह तो अपने अभीष्ट स्थान को प्राप्त हुआ दूसरे साहिब बीच में ही बिलबिलाकर मर गये। यही दशा सुखाभिलषित पुरुषों की संसार रूपी बाग में होती है जो कोई सीधे सादे हैं वह तो सद्गुरु के वचनानुसार शरीर रूपी बाग में आकर शब्द रूपी माली से मिलकर परमानन्द के भागी होते हैं। दूसरे जो यह कहते हैं कि संसार कहां से और किस लिये हुवा, ईश्वर को क्या प्रयोजन था वह धर्म सत्य है या असत्य, परमेश्वर है या नहीं इत्यादि वे भ्रम जाल में फँस कर गुरु के वचन पर दृढ़ विश्वास न कर समय को वृथा तर्क दलीलों में गवांकर घोर नर्क में गिरते होते हैं। इसीलिये परमपिता अनन्त दयालु ने वेद में यह उपदेश दिया है कि काल को वृथा मत गवांओ, परमेश्वर त्रिकालातीत है कणाद महर्षि ने वैशेषिक दर्शन में कालका यह लक्षण किया है।

अपरस्मिन्नपरं युगपच्चिरं क्षिप्रमिति काल लिङ्गानि।

जिसमें अपर पर युगपत् एकबार, विलम्ब शीघ्र इत्यादि प्रयोग होते हैं उसको काल कहते हैं।

नित्येष्वभावादनित्येषु भावात्कारणे कालाख्येति।

जो नित्य पदार्थों में न हो, अनित्यों में हो इसलिये कारण में ही काल संज्ञा है यह मोक्ष के समय स्वयं ही लय होजाता है। परमेश्वर काल का अधिष्ठान है जैसे किरणों का सूर्य और लहरों का समुद्र है जिसका अनन्त अपार सुख ही स्वरूप है उस सबसे बड़े परमेश्वर को बार २ हमारा नमस्कार हो।

पात्र परीक्षा

[ले०—ला० केसरी मल अग्रवाल]

पौष माघ के महीने में मकर राशि पर स्थित रहने से भगवान भास्कर भी अपने तेज को समेट कर शांति धारण कर लेते हैं। शीत की अधिकता से सूर्योदय के पहले घर से बाहर निकलने को किसी का जी नहीं चाहता ऐसे ही दारुण शीत में प्रातः काल के समय एक वेश्या कहीं से ब्याह की साई बजाकर रथ में बैठी अपने घर जा रही थी। यद्यपि उसने अच्छी प्रकार ओढ़ रक्खा था और चारों ओर से रथ के पड़दे भी बंद थे तथापि जाड़े की अधिकता से दांत बज रहे थे। इसी समय वेश्या को अपने रथ के निकट "रामराम सीताराम, श्रीराम सताराम" की ध्वनि सुनाई दी। बाहर देखा तो एक महात्मा केवल एक लंगोटी लगाये नंगे बदन नंगे पांव हाथ में जलसे भरा लोटा लिये "रामराम सीताराम, श्रीराम सीताराम" की धुन में मस्त शीघ्रता से चलेजारहे हैं गणिका ने विचारा कि मुझे रथमें बैठे हुये इतना ओढने पर भी सर्दी सताती है और यह नंगे बदन बाहर पैदल चले जारहे हैं, सर्दी इनके निकट भी नहीं आती, इनको जरूर कोई ऐसा मंत्र आता है जिससे शर्दी गर्मी आदि की व्यथा नहीं व्यापे। अतः मैं भी इनकी चेली क्यों ना हो जाऊं? उसने सारथी से अपना रथ भी महात्मा के पीछे ले चलने को कह दिया।

× × × × × ×

ज्योंही महात्मा अपने आश्रम में पहुंचे गणिका भी उपस्थित होगई, अपरिचित स्त्री को आश्रम में देखकर महात्मा ने पूछा, हे देवी! तुम कौन हो? महाराज! मैं वेश्या हूं, गाने बजाने का धंदा करती हूं, आपके पूज्य चरणों की चेली बनने को आई हूं, मुझे चेली बनालेवें महात्मा चकराये यह वेश्या होकर चेली क्यों बनती है और इसको चेली बनाकर ही क्या करेंगे अतः उसको टालने लगे। किन्तु वेश्या के भाग्य का उदय होचुका था, वह महाराज की युक्तियों से टस से मस नहीं हुई, बल्कि दृढ़ता से कहने लगी महाराज! मैं चेली हुये बिना नहीं मानूंगी महात्मा असमंजस में पड़गये कि देखने वाले भी

क्या कहेंगे कि तुलसीदास के घर में वेश्या ! वह टालने की युक्ति सोच ही रहे थे कि अकस्तमात् उनकी दृष्टि ताक में रखे एक काठ के तोते पर पड़ गई। आप उसको उठालाये और वेश्या को देकर कहने लगे, यदि तुम वास्तव में चेली बनना चाहती हो तो इस तोते को "राममंत्र" पढ़ा लाओ। जब यह तुम्हारी आवाज के साथ "रामराम सीताराम, श्रीराम सीताराम" का शुद्ध उच्चारण करने लग जावे जब ले आना चेली बना लेवेंगे।

× × × × × ×

वेश्या को तो महाराज पर विश्वास हो ही गया था तोता पढ़ाने को लेकर चली आई और पढ़ाने लगी "रामराम सीताराम, श्रीराम सीताराम" खाना, पीना, सोना, बैठना, खेल, कूद, काम, धंदा, सब त्याग करके वेश्या को यदि कुछ काम था तो केवल तोता पढ़ाना "रामराम सीताराम, श्रीराम सीताराम"। दासी बांदी नौकर चाकर सब समझाते किन्तु वेश्या तो राम रटन में ऐसी मग्न थी की किसी की बात ही नहीं सुनती।

× × × × × ×

पाठको ! देखिये वेश्या-जो स्वभाव से ही कुटिल होती है-की दृढ़ भक्ति और देखिये, महात्मा तुलसीदास जी की "पात्र परीक्षा" कितनी कठिन परीक्षा ली है। आजकल बहुत से विद्वान् पंडित थोड़े आर्थिक लोभ के कारण चाहे जिसके कान में मन्त्र फूकने को तयार होजाते हैं, दुराचरणों की ओर ध्यान नहीं देकर उत्तम से उत्तम संस्कार करा देते हैं, जिनके फल भी विपरीत ही होते हैं। इन पंक्तियों के लेखक ने स्वयं कई सज्जनों को यज्ञोपवीत तक निकाल कर फेंकते देखा है। ऐसी दशा में गुरु और शिष्य दोनों पाप के भागी बनते हैं किन्तु यह सब जान बूझ कर भी कराता कौन आर्थिक लोभ।"

× × × × × ×

एक के पश्चात् दूसरा तीसरा और चौथा दिन बीतने लगे। काठका तोता नहीं बोला कोई अदा हीन मनुष्य होता तो एक आध दिन उद्योग करके रह जाता किन्तु गणिका "विश्वासो फल दायकः" के आधार पर निष्कपट भाव से महात्मा के आदेशानुसार भोजन निद्रा की सुध भूलकर वही राम मंत्र तोते को पढ़ाती रही। छठे दिन तोते के काठ के परों पर कुछ हरियाली दिखने लगी गणिका का व्यथित चित्त भी हरा होगया। रामराम सीताराम की ध्वनि खूब जोर से अलापने लगी, सातवें दिन तोता भी उसके शब्द के साथ राम मंत्र का उच्चारण करने लगा। सफलता मिलने से गणिका को अपार हर्ष हुवा। तोते का पींजरा शिर पर धरके महात्मा के आश्रम में उपस्थित होगई।

× × × × × ×

महाराज ! आपका तोता आपके आदेशानुसार पढ़ गया है। परिक्षा करलें और मुझे चेली बना लेवें। गोसाईं जी पहले तो अचंभे में आये किन्तु ध्यान करके देखा तो गणिका को यथार्थ पाया।

× × × × × ×

देवि ! मैं तुमको चेली क्या बनाऊं तुमतो स्वयं भगवान के चरणों में पहुंच चुकी हो किन्तु वेश्या की तो एकान्त इच्छा चेली बनने की थी महाराज ने चेली बनालिया और जगत् में चरितार्थ कर दिया:-

"सुवा पढ़ावत गणिका तारी" :

× × × × × ×

ईश्वर शरणागत वत्सल हैं, थोड़ी सी भी भक्ति करने से हमारे सब अपराधों को क्षमा करके

चरणों में शरण देदेते हैं यदि हम उनके बनाये नियमों पर ही चलकर निर्वाह करें तो दुःख शब्द ही संसार से उठ जावे। जब अनेक अपराध करने वाली गणिका भी विश्वास पूर्वक भक्ति करके भगवान् के पवित्र चरणों में शरण पा सकी है तब हम ईश्वर भक्त जनों के लिये क्या दुर्लभ है, किन्तु चाहिये हृदय की निर्मलता, चित्त की भावना और भगवत् चरणोंमें अटल विश्वास।

योग-साधन

[ले०-श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती]

१०११. ध्यान दो प्रकार का है। जप सहित ध्यान अर्थात् जिस ध्यान में जप होता रहे। जप-रहित ध्यान अर्थात् केवल ध्यान जिसमें किसी मंत्र का जप न हो, जब तुम "ओ३म् नमो नारायण" का मानसिक या वाचिक जप करते हो तो यह केवल जप है। जब तुम मंत्र का जप करते हो और साथ ही हरि की मूर्ति का शंख, चक्र, गदा, पद्म और पीताम्बर सहित ध्यान करते हो तो यह जप सहित ध्यान है। जब तुम्हारा ध्यान अधिक परिपक्व हो जावेगा तो जप आप ही आप छूट जावेगा। उस समय केवल शुद्ध ध्यान शेष रह जावेगा। इसी को जप रहित ध्यान कहते हैं!

१०१२. मथुरा के निकट एक दावेना नाम का ग्राम है। वहां १० अक्तूबर स० १९३४ को स्वामी कृष्णानन्द अपनी पार्टी सहित कीर्तन कर रहे थे। एक स्त्री जो भक्त थी अपनी लड़की को ताले में बन्द करके कीर्तन के लिए चली गई। घर में सिवाय उस बालिका के और कोई नहीं रहा। जब वह स्त्री सत्संग से वापिस आई तो उसने बालिका को हंसते और खेलते पाया। माता ने बालिका से पूछा तुम किसके साथ खेल रही हो? लड़की ने उत्तर दिया "मैं इस बूढे पुरुष के साथ खेल रही हूं।" बालिका ने दो तीन बार पूछा क्या तुमको वह दिखाई नहीं देता है? माता बूढे को नहीं देख सकी बूढा जो कि स्वयं भगवान् कृष्ण था अन्तर्ध्यान होगया। जहां भक्ति और श्रद्धा है वहां भगवान् आप उपस्थित होजाते हैं। जहां काम [इच्छा] है वहां राम का वास नहीं।

१०१३. मेरठ में शंकर कुटीर है जहां केवल संन्यासी ठेहरते हैं। उसके सामने शंकर दयाल ऐडवोकेट का बंगला है। शंकर दयाल की एक लड़की है। वह भक्त बालिका है। वह नित्य भगवान कृष्ण की पूजा करती है। यह सब उसके पूर्व संस्कारों का फल है। वह नित्य पूजा के लिए बाग से फूल तोड़ कर लाया करती थी। एक दिन प्रातः

काल जब वह पूजा के लिए पुष्प तोड़ रही थी एक बालक जिसके शिर पर मोर पंख का मुकट था उसके निकट आया और उससे बोला कि "पुत्री इस मंत्र का उच्चारण कर।" उसने जप करने के के लिए मंत्र बताया और फिर वह अन्तर्ध्यान होगया। वह बालक भगवान् कृष्ण के सिवाय और कोई नहीं था। यह घटना ५ अक्तूबर १६३४ को हुई। कलियुग में भी यदि तुमको रत्ती भर भी विश्वास हो तो भगवान् सब स्थान में दर्शन देने के लिए उपस्थित हो सकते हैं।

१०१४. १४ नवम्बर सन् १६३४ को फर्रुखाबाद में मैं एक १६ वर्ष के लड़के से मिला जो कि शिव का भक्त था। वह कुछ मास से "ओ३म् नमो शिवाय" मंत्र का जप करता था परन्तु उसको भगवान् शिव के दर्शन नहीं हुए। इससे उसे बड़ा दुःख हुआ और उसने यह निश्चय किया कि मैं प्राण त्याग दूंगा। उसने इस सम्बन्ध में भीषण कर्म करना चाहा, उसी समय भगवान् शिव ने ज्योतिर्मय नील वर्ण में दर्शन दिए। भगवान् शीघ्र ही अन्तर्ध्यान होगए, और उस लड़के ने यह वाणी सी "तू क्या वर मांगता है?" लड़के ने उत्तर दिया मैं आपके एकबार फिर दर्शन करना चाहता हूं परन्तु भगवान् शिव ने उसको फिर दर्शन नहीं दिए। वह लड़का अब भी फर्रुखाबाद में मौजूद है। भगवती प्रसाद जी डिप्टीकलक्टर उस लड़के को सरस्वती भवन में मेरे पास लाए थे।

१०१५. शूकर को पीयर साबुन, उत्तम स्नान, और सुन्दर प्लेट में उत्तम स्वादिष्ट पदार्थ खाने को दो, वह उन पदार्थों को न खाकर गन्दगी खाने की ओर दौड़कर जावेगा। इसी प्रकार यदि तुम सांसारिक मनुष्यों को सन्तों, योगियों और संन्यासियों के संगमें एकान्त स्थान और सुन्दर दृश्यों के बीच रखना चाहो तो वह कभी नहीं ठैर सकते वह वहां अशान्त और दुःखी होजावेंगे, उनकी स्थिति ऐसी हो जावेगी जैसी बिना पानी के मछली की या उसी शूकर की भान्ति जो उत्तम स्नानागार में रख दिया जावे।

१०१६. पहाड़ की प्रार्थना, ईसा मसीह का अमूल्य उपदेश है। उपदेश के भाव में जीवन व्यतीत करना चाहिए। समस्त अध्यात्मिक साधन और वेदों का सार इसी में है। इस शिक्षा का नित्य के जीवन में अभ्यास करो।

१०१७. वज्रौली मुद्रा सीखने में तुम्हारा उद्देश पवित्र होना चाहिए। तुमको केवल यह लक्ष बनाना चाहिए कि पूर्ण ब्रह्मचर्य्य धारण करके आत्म-साक्षात्कार करना है। स्त्रियों से सर्वथा दूर रहो। योग क्रिया द्वारा प्राप्त की हुई शक्ति का बुरा प्रयोग मत करो। अपने उद्देश को पूर्णतया विश्लेशण करके निरखो। योग-साधन के मार्ग में भिन्न २ प्रकार के लालच और भय हैं। मेरे पुत्र प्रेम! मैं तुमको बार २ सावधान करता हूं होशियार रहो।

१०१८. अनन्त जन्मों के अभ्यास से जो माया के संस्कार होगए हैं वह दीर्घ काल तक योग या अध्यात्मिक साधनों के बिना नष्ट नहीं होते। परमात्मा का न्याय मनुष्यों के न्याय से बिलकुल भिन्न होता है। परमात्मा मनुष्यों की जांच उनके अन्तःकरण से करता है और मनुष्य बाह्य कर्मों को देखकर।

१०१९. हनुमान घाट में दो लड़कियां डूबने वाली थीं। दो नव युवक तेज़ी से उनको बचाने के लिए दौड़े और दोनों लड़कियों को बचालिया। एक मनुष्य ने लड़की से कहा "मुझ से विवाह करले"। दूसरे आदमी ने कहा "मैंने अपना कर्तव्य पूरा किया"। परमात्मा ने मुझे सेवा करने का अवसर

दिया और इससे मेरी आत्मा उन्नत हुई। उसका चित्त शुद्ध होगया। कर्म्म एक ही है परन्तु उद्देश प्रथक् है। फल भी दोनों का भिन्न २ होगा।

१०२०. लोग कहते रहें कि "पण्डित रमाकान्त शर्मा ने बहुत नेक काम किया है परन्तु उसी कर्म से परमात्मा अप्रसन्न हो सकते हैं। यह संसार सदैव उत्पत्ति और प्रलय में रहता है जिसको कल्प और प्रलय व रात दिन कहते हैं।

१०२१. तीन तत्त्व पृथ्वी, जल और अग्नि को मूर्त्त कहते हैं और वायु व आकाश अमूर्त्त कहलाते हैं।

१. जब हम बुद्धि से परे पहुंच जावेंगे तब हमको ज्ञान की प्राप्ति होगी। तर्क इसमें सहायक है, और तर्क बाधक है।

२. जब हम इच्छाओं पर विजय प्राप्त करलेंगे तब हम शक्तिशाली बन जावेंगे। पुरुषार्थ सहायक है, पुरुषार्थ रुकावट है।

३. जब हम सुखको अतिक्रमण कर जावेंगे तब हमको आनन्द की प्राप्ति होगी। इच्छा सहायक है, और इच्छा बाधक है।

४. जब हम व्यक्तित्व को उलघंन कर जावेंगे तब ही हम सच्चे अर्थों में मनुष्य बनेंगे। अहंकार सहायक है, अहंकार बाधक है।

५. जब हम मनुष्यत्व से पार चले जावेंगे तब ही हम मनुष्य बनेंगे! पशुत्व 'शरीर भाव' सहायक है। पशुत्व रुकावट है।

१०२२. बुद्धि को संयम पूर्वक सहज ज्ञान में बदल दो और तुम ज्ञान स्वरूप बनजाओ। यह तुम्हारा आदर्श है।

१०२३. पुरुषार्थ को सम, श्रेष्ठ और प्रवाह युक्त अध्यात्म शक्ति में परि वर्तित करदो। तुम पूर्णतया चेतन शक्ति बनजाओ। यह तुम्हारा आदर्श है।

१०२४. भोग को संयम पूर्वक निष्काम कर्म में बदल दो और तुम पूर्ण आनन्द रूप बनजाओ। यह तुम्हारा आदर्श है।

१०२५. पशुपन कोनेतृत्व शक्ति में बदल दो और तुम कृष्णरूप बनजाओ। यह तुम्हारा आदर्श है।

१०२६. मूल प्रकृति अव्यक्त और माया दूसरा नाम है। यह दृश्य जगत का मूल या बीज रूप है। प्रलय काल में समस्त विश्व इस मूल प्रकृति में समाविष्ट होजाता है। जिस प्रकार टिफन का कटोरदान एक पात्र में और तकिया, कम्बल, गद्दा और चद्दर बिस्तरबन्द में लिपट जाते हैं इसी प्रकार यह जगत अव्यक्त में समा जाता है।

१०२७ शुद्ध सत्व या माया से ईश्वर का कारण शरीर बनता है मलिन सत्व या राजस से जीव का कारण शरीर बनता है। ईश्वर माया का अधिकारी है और जीव अविद्या से आवर्त है।

१०२८. केवल ब्रह्म-ज्ञान द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। श्रुति घोषणा करती है कि जो ब्रह्म को जानता है वही मृत्यु को जीतता है इसके अतिरिक्त मोक्ष का और कोई भी मार्ग नहीं है। 'ऋते ज्ञानेन मुक्ति, आत्म ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं हो सकती। जिसको ज्ञान होगया है उसका फिर जन्म नहीं होता।

१०२९. अध्यास का अर्थ एक पदार्थ के गुणों को दूसरे पदार्थ में आरोपण करना जैसे चान्दी के गुणों का सीपी में आरोपित करना।

१०३०. समस्त दृश्य पदार्थों में आत्मा सदैव द्रष्टा रूप रहता है क्योंकि यह अव्यक्त और ज्योति स्वरूप है। यह न तो स्वयं दृश्य है और न ही किसी पदार्थ द्वारा दृष्टि-गोचर होता है यह सरल और सहज ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष होता है।

१०३१. वेदान्त के स्वाध्याय के लिए लघु

वासुदेव और वेदान्त सार आरम्भ कर्ताओं के लिए बहुत उपयुक्त पुस्तकें हैं। इनके अंगरेजी अनुवाद थियोसो फीकल सोसायटी अदयार से प्राप्त हो सकते हैं।

अविनाशी तु तद्विद्धि येन सर्वं मिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुं महंति॥

इसको अविनाशी जानना चाहिए,
जिससे यह सब अच्छादित है।
इस अव्यय अविनाशी का,
नाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है।

१०३२. यह श्लोक आत्मा या ब्रह्म के अमर भाव को स्पष्टतया प्रगट करता है। इसका अर्थ सत या सच्चाई है। यह आत्मा आकाशवत सर्वत्र व्यापक है। आत्मा अव्यय और अविनाशी है क्योंकि यह न तो कभी वृद्धि को प्राप्त होता है और न क्षोभको। जो परिवर्तन आप इस नाशमान शरीर क्षोभ में देखते हैं वह इस अविनाशी आत्मा में आपको दृष्टि गोचर नहीं हो सकते। चन्द्रमा में भी घटना और बढ़ना है परन्तु आत्मा में नहीं है। शरीर कभी दुबला है और कभी मोटा है परन्तु एकरस अव्यय आत्मा की यह गति नहीं है। आत्मा सम-भाव वाला है और प्रकृति भिन्न-भाव वाली है। आत्मा एक है। प्रकृति अनेक है। एक ही बहुत होगया है एक सत्य है, बहुत असत्य और धोखा है।

१०३३. अध्यात्म-ज्ञान का सन्देश उनके लिए है जिनका धर्म में, परमात्मा में, कर्म्मवाद में, अवतार-वाद में, और परलोक में विश्वास नहीं है।

१०३४. पश्चिम में व्यक्तित्व का बहुत महत्व है। हिन्दू के लिए यह बड़ी बात नहीं है। उपाधी, सम्मान, दर्जा, पद और गौरव व्यक्ति के पीछे लगने वाले पदार्थ हैं। व्यक्ति विशेष की मृत्यु पश्चिम वालों के लिए शोक की बात है परन्तु हिन्दू के लिए मृत्यु आनन्द की बात है। हिन्दू मोक्ष प्राप्ति के लिए शरीर का नाश कर देता है। शरीर अहंकार का रूप है। हिन्दू त्याग और सन्यास को श्रेष्ठ समझता है। हिन्दू धर्म प्रधान जाती रही है। पश्चिम वाले त्याग और सन्यास का नाम सुनते ही भय भीत होजाते हैं। हिन्दू छोड़ने से प्रसन्न होता है और यूरोप वाले ग्रहण करने से प्रसन्न होते हैं।

१०३५. भक्तों और ज्ञानियों में, रन्डियों में और परहंसों में, वैष्णवों में और शैवों में, केथोलिकस में और प्रोटैस्टेन्टस में, कर्मयोगियों में और निवृत्ति मार्गियों में, कट्टर संस्कृत पण्डितों और उदार सन्यासियों में अनन्त काल से युद्ध चलता आया है और यह सदैव जारी रहेगा। तुमको इन पन्थियों की बातों में अपना दिमाग क्यों खराब करना चाहिए। यह केवल समय और शक्ति का दुरुपयोग है। आम के वृक्ष के पत्तों को नहीं गिनना चाहिए। जिसने अपनी आत्मा का साक्षात्कार कर लिया है वह चाहे किसी पन्थ का हो उसे किसी से द्वेष नहीं होता।

१०३६. क्रोध इच्छाओं का बदला हुआ रूप है जिस प्रकार दूध का दही बनजाता है। यदि किसी की इच्छा की पूर्ति नहीं हुई है। या उसकी इच्छा पूर्ण होने में रुकावट हुई है तो भोगी पुरुष ऐसी अवस्था में शीघ्र नाराज और क्रोधित होजायेगा। मोह, भ्रम, स्मृति नाश, बुद्धिनाश आदि इसके अनन्तर होते हैं और अन्त में नाश की प्राप्ति होती है। जब मनुष्य को बहुत क्रोध आजाता है तो उस वेग का रुकना कठिन है ऐसी अवस्था में वह चाहे जो कहने लगता है और आपे से बाहर होजाता है।

१०३७. अपराधियों के इतिहास का अध्ययन करो तो पता लग जावेगा कि डकैती, ज़िना मारपीट

स्त्रियों का हरण, खून आदि जितने बुरे कामों के मुकदमे अदालतों में आते हैं उनका रहस्य केवल इच्छा पूर्ति ही होती है। यह इच्छा चाहे काम की हो चाहे कांचन की। लड़ाई गर्मा गर्म शब्दों से आरम्भ होती है। और फिर लाठी, चाकू, और छुरे पर समाप्त होती है। जब मनुष्य क्रोधित होजाता है तो वह न्याय की शक्ति और बुद्धि को तिलाजंली दे देता है और उसको अपने कर्म का ज्ञान नहीं रहता कि मैं क्या कर रहा हूं। एक बंगाली और एक सिक्ख एक नौका में बैठकर गंगा नदी को पार कर रहे थे, बंगाली ने उस सिक्ख के लिए शाला और बदमाश शब्द का प्रयोग किया। सिक्ख को इस बात पर बड़ा क्रोध आया उसने उस बंगाली की गर्दन पकड़ कर उसे नदी में फेंक दिया। बंगाली मर गया। यद्यपि वह सिक्ख शरीर में बलवान था परन्तु उसका दिमाग बड़ा कमजोर था। एक शब्द ने उसका दिमाग पलट दिया और उसके चित्त का संयम जाता रहा। वह क्रोध का गुलाम बनगया। यदि उसको विवेक विचार होता तो वह ऐसा उलटा कर्म कभी नहीं करता।

कल्याण–बसंत

[ले०–आचार्य अनन्त लाल गोस्वामी द्वारा प्राप्त]

लोक की कलान में कमाल काम कीनों सुनो,
कारीगरी केलि में करत सरसंत है।
कमल कली औ कूल गंगा कोटि कल्प तरु,
काम धेनु कामदा हू हसत हसंत है।
केवल कृपा है एक करुणा निधान ही की,
काहू में कसर नाहिं रसिक रसंत है।
कविको समाज कवि मंडल दराज आज,
कासों के कवीन बीच, बगरयौ बसन्त है॥

षट् प्रमाण संग्रह

अनुपलब्धि प्रमाण

गतांक से आगे

[ले०—महात्मा राम "भ्रमण"]

चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरंजनम् ।
नाद बिन्दु कलातीतं तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

'योग्यानुपलब्धि करणि का प्रमा अभाव प्रमा' योग्य अनुपलब्धि है करण जिस 'प्रमा' का वह अभाव 'प्रमा' कही जाती है। जिस 'अधिकरण' में जिस अभाव का ज्ञान होता है उस 'अधिकरण में, उस अभाव के 'प्रतियोगी' का जो ज्ञान है उसका नाम 'उपलब्धि' है तथा 'उपलंभ' है। उस उपलब्धि के अभाव को 'अनुपलब्धि' कहते हैं तथा 'अनुपलंभ' कहते हैं। यह 'अनुपलब्धि' ही अभाव 'प्रमा' का 'करण' है। इस 'अनुपलब्धि' में योग्यता की भी अपेक्षा है। 'अनुपलब्धि' में जिस अभाव का ज्ञान होता है उस अभाव के 'प्रतियोगी' का आरोप करके जिस 'अधिकरण' में उस अभाव के 'प्रतियोगी' का आपादन (निषेध) किया जाता है वह 'उपलब्धि' का अभावरूप 'योग्यानुपलब्धि' कही जाती है।

जैसे प्रकाश वाले भूतल में 'यदिअत्र घटः स्यात्तर्हि उपलभ्येत' इस पृथ्वी तल में यदि 'घट' होता तो इस भूतल की न्याईं वह 'घट' भी प्रतीत होता परंतु प्रतीत नहीं होता इसलिये इस भूतल में 'घट' नहीं हैं। इस प्रकार घट रूप 'प्रतियोगी' का आरोप करके पश्चात् उस 'घट' की प्रतीति का जो आपादन करना है उसको 'योग्यता' कहते हैं। यह योग्य अनुपलब्धि' ही अभाव 'प्रमा' का 'करण' रूप होने से 'अनुपलब्धि प्रमाण' कहा जाता है। तथा फल रूप होने से अभाव 'प्रमा' कही जाती है। 'असाधारण कारणं करणम्' जो पदार्थ कार्य की उत्पत्ति में 'असाधारण कारण' होता है वह 'करण' कहा जाता है। जैसे प्रत्यक्ष 'प्रमा' की उत्पत्ति में नेत्र इन्द्रिय 'करण' है। तथा अभाव 'प्रमा' की उत्पत्ति में 'योग्य अनुलब्धिकरण' है। कारण दो प्रकार का होता है एक 'निमित्त कारण' दूसरा 'उपादान कारण'।

'नियत पूर्ववृत्ति कारणम्' जो पदार्थ कार्य की उत्पत्ति से पूर्व 'नियम' से वर्त्तमान होता है वह पदार्थ उस कार्य के लिये 'कारण' कहा जाता है। जैसे 'घट' रूप कार्य की उत्पत्ति से पूर्व 'दंड' चक

कुलाल, मृतिकादि, कारण विद्यमान होते हैं। 'कार्यान्वितं कारणं उपादानं कारणं' जो 'कारण' अपने 'कार्य में ओत प्रोत रहता है वह 'उपादानं कारण' कहा जाता है। जैसे 'घट' रूप कार्य में 'मृतिका' ओत प्रोत है तथा पट रूप कार्य में 'तन्तु' ओत प्रोत रहते हैं। 'कार्यानुकूल व्यापार वत् कारणं निमित्त कारणम्' कार्य के अनुकूल व्यापार वाले कारण को 'निमित्त कारण' कहते हैं जैसे 'घट' रूप कार्य की उत्पत्ति के अनुकूल व्यापार वाले कुलालादिक 'निमित्त कारण' हैं। अभाव प्रमा के विषय रूप अर्थ का लक्षण इस प्रकार है 'नञर्थो-ल्लिखित् धीविषयः अभावः' नञ (नहीं) शब्द के अर्थ को विषय करने वाली जो 'नास्ति' इस प्रकार की बुद्धि है उस बुद्धि का विषय अभाव कहा जाता है। जैसे 'भूतले घटो नास्ति' इस प्रतीति का विषय भूतल में 'घट' का अभाव है। इस 'अभाव' को न्याय शास्त्र वाले चार प्रकार का मानते हैं।

'प्राग भाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव, अन्योन्याभाव'। उत्पत्ति से पूर्वकाल में जो कार्य का अपने कारण में अभाव रहता है उसको 'प्रागभाव' कहते हैं। जैसे 'घट' की उत्पत्ति से पूर्व 'घट' का मृतिका में अभाव रहता है। भग्न हुए घटादि कार्यों का जो अपने कपालादिकों में अभाव है वह 'प्रध्वंसाभाव' कहा जाता है। और 'भूतले घटो नास्ति' घट के अभाव वाले भूतल में घट का 'अत्यन्ताभाव' है 'भूतले न घटः' भूतल में घट के विद्यमान होते हुए भी यह भूतल घट नहीं है तथा घट भूतल नहीं है। यह 'अन्योन्याभाव' है। 'प्रागभाव, अनादि है तथा नाशवान् है। 'प्रध्वंसाभाव, उत्पत्ति वाला है तथा नाशवान है। और 'अत्यन्ताभाव, तथा 'अन्योन्याभाव' दोनों उत्पत्ति नाश रहित होने से नित्य हैं। 'प्रागभावः प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव, इन तीनो अभावों को श्रुति तथा सूत्रों के विरुद्ध होने से इनका खण्डन करके केवल अत्यन्ताभाव ही ग्रहण किया है। यह अत्यन्ताभाव पारमार्थिक, व्यवहारिक, इस भेद से दो प्रकार का है। 'नेहनानास्ति किञ्चनः' इस श्रुति ने शुद्ध चैतन्य ब्रह्म में जीव, इश्वर, जगत, रूप समस्त द्वैत प्रपंच का 'अत्यन्ताभाव' कथन किया है इसलिये यह पारमार्थिक 'अत्यन्ताभाव' कहा जाता है। और भूतलादिकों में जो घट पटादिको का 'अत्यन्ताभाव' है जिसको 'भूतलेघटोनास्ति' यह प्रतीति विषय करती है वह व्यवहारिक 'अत्यन्ताभाव' कहा जाता है। यह 'व्यवहारिक अत्यन्ताभाव' ही पूर्वोक्त 'योग्य अनुपलब्धि' से ग्रहण होता है। इति अभाव प्रमा। इस प्रकार प्रत्यक्षप्रमा, अनुमितिप्रमा, उपमितिप्रमा, शाब्दीप्रमा, अर्थापत्ति प्रमा, अनुपलब्धि प्रमा, ये छः प्रकार की प्रमा आत्मा के आवर्णशक्ति वाले अज्ञान की निवृत्ति करती है 'नास्ति न प्रकाशते इति व्यवहार हेतुः आवर्ण शक्ति' ब्रह्म नहीं है ब्रह्म भासता नहीं इस प्रकार के व्यवहार का हेतु 'आवर्ण शक्ति' वाला अज्ञान है। इस अज्ञान की दो प्रकार की शक्ति है 'नास्ति' ब्रह्म नहीं है इस प्रतीति का हेतु 'असत्त्वापादक आवर्ण' है। और 'न भाति' ब्रह्म भासता नहीं इस प्रतीति का हेतु 'अभाना पादक आवर्ण' है।

परोक्ष ज्ञान को उत्पन्न करने वाली अनुमिती आदि 'प्रमा' से 'असत्त्वापादक' आवर्ण की निवृत्ति होती है और अपरोक्ष ज्ञान को उत्पन्न करने वाली प्रत्यक्षादि 'प्रमा' से 'अभाना पादक' आवर्ण की निवृत्ति होती है। असत्त्वापादक आवर्ण की निवृत्ति होने से ब्रह्म में सद्भावना रूप आस्तिक बुद्धि होती है और 'अभान पादक' आवर्ण की निवृत्ति से ब्रह्म का साक्षात् कार रूप अपरोक्ष ज्ञान

होता है जिस ज्ञान से सर्व जगत को अपने आत्मा में तथा ब्रह्म में स्थित हुआ देखता है। जैसे श्री गीता में कृष्ण भगवान् ने अर्जुन के प्रति कहा है।

'येन भूतान्य शेषेण द्रक्ष्य स्यात्मन्यथो मयि'।

तथा श्रुति में आत्मैवेदं सर्वं। ब्रह्मवेदं सर्वं। पुरुष एवेदंविश्वं। सर्वं खल्विदं ब्रह्म इत्यादि श्रुतियों में सर्व जगत को आत्म रूप तथा पुरुष रूप तथा ब्रह्म रूप कहा है। इसी अद्वैत रूप अर्थ को 'तत्त्वमसि' आदिक महां वाक्यों द्वारा अधिकारी पुरुष अपने आत्मा में अनुभव करता है। 'अहं ब्रह्मास्मि' इस प्रकार की अपरोक्ष प्रमा से ब्रह्म के सावर्णरूप मूला ज्ञान की निवृत्ति होकर ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। इसी को मुक्ति कहते हैं। यह ही प्राणी मात्र का परम प्रयोजन है। इति

वेदान्त की मुनादी।

[संग्रह कर्ता जमुना प्रशाद श्री वास्तव]

जिन्हें कुछ खबर मेरे वृतांत की है।
उन्हें फिक्र भी कुछ न वेदान्त की है॥
गरज़ मैंने फिक्र उनकी शान्त की है।
मुनादी जहाँ में यह वेदान्त की है॥
किसी ने अबस डर के भी कुछ लिया है।
तुम्हें डर है किसका, तुम्हें खौफ़ क्या है॥
जगत मिथ्या है जगत मिथ्या है।
मुनादी जहां में यह वेदान्त की है॥
बखेड़ों से दुनियां के क्यों न दुर्जी हो।
बखेड़ों में तुम फसने वाले नहीं हो॥
जहाँ स्वप्न है और तुम स्वप्न में हो।
मुनादी जहां में यह वेदान्त की है॥
न कुछ धर्म में है न कुछ ध्यान में है।

न कुछ कर्म में है न कुछ ज्ञान में है॥
यह सब महज़ माया के इमकान में है।
मुनादी जहां में यह वेदान्त की है॥

अबस बन्ध के रंज में हो दुखी तुम।
अबस मोक्ष के ग़म में आन्दोंगहन तुम॥
सदा मुक्त हो बन्ध हरगिज़ नहीं तुम।
मुनादी जहां में यह वेदान्त की है॥

तईयन से बेसूद पाबन्द तुम हो।
तफ़ैयद में बेफायदा बन्द तुम हो॥
खुद अय दोस्तो! सच्चिदानन्द तुम हो।
मुनादी जहां में यह वेदान्त की है॥

तुम अय ध्यान की राह में बढ़ने वालो।
तुम अय ज्ञान के बाम- पर चढ़ने वालो॥
अभय पद को पहुंचों मेरे पढ़ने वालो।
मुनादी जहाँ में यह वेदान्द की है॥

तुम्हें भूल कर भी किसी का न डर हो।
अभय तुम हो, बे खोफ और बे ख़तर हो॥
अचल हो, अटल हो, अजर हो, अमर हो।
मुनादी जहां में यह वेदान्त की है॥

तुम्हारा अगर मुद्दआ शान्ती है।
सुनो 'मेहर' दुनिया यही मानती है॥
कि बस! शान्ति वह है, जो वेदान्ती हो।
मंनादी जहां में यह वेदान्त की है॥

वसंत

[ले०–श्री प्रभुदत्त श्री ब्रह्मचारी "आश्रम"]

भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी ने श्री गीता जी के दशवें अध्याय में अपनी विभूतियों के वर्णन में कहा है:–

ऋतूनां कुसुमाकरः ।

ऋतुओं में मैं कुसुमाकर अर्थात् वसन्त हूं। कुसुम पुष्प, आकर–खान। अर्थात् वसन्त ऋतु में पुष्प सृष्टि विशेष रूप से समुल्लसित रहती है। विष्णु भगवान सौन्दर्य के अधीश्वर, आनन्द के सागर, सुख की खान, एवं मनोज के कारण पिता हैं। जिस प्रकार पुत्र जन्म से लोक में आनन्द व हर्ष होता है तथा पुत्र की वृद्धि से पिता को सुख होता है इसी प्रकार ये। वसन्त के नूतन सञ्चारक दिन आनन्दमय, प्रमोदपूर्ण रसिक होने से भगवान् के परम प्रिय हैं। कामदेव की वृद्धि के संभारों को देखकर भक्त वत्सल पुत्र वत्सल होगये। इनदिनों में भगवान् का भजन मन्त्रजाप ध्यान करने से शीघ्र फलदायक होता है। जो निर्गुण ब्रह्म सर्व प्रथम एक (अद्वैत) था फिर क्रीड़ा के लिये जगत् को बनाया। जगत् के नाना भांति के चित्र विचित्र पदार्थ बनाकर जो उनसे नाना रूप धारण कर क्रीड़ा करता है काल कल्पना में वह स्वयं आज (वसन्त) के दिन अपने को तद्रूप कर रहा है। अनन्त ब्रह्माण्डाधिनायक जगन्नायक ज्योतिःस्वरूप परिपूर्ण ब्रह्म ने अपने विराट् आयोजन (जगत्) की रक्षा के लिये अपने तीन स्वरूपों में विभक्त किया। काल चक्र को नियामक रक्खा। वर्ष मास और दिन बने अपने स्वरूपों के (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र) नाम रक्खे। चतुर्मास के अधिष्ठाता (शासक) ब्रह्मा जी हुये। सर्दी के दिनों (शरद् शिशिर) के शासन विधायक विष्णु भगवान् हुये, अब गरमी के शिवजी बने। राज्य परिवर्तन में दूसरे शासक के आनेपर उत्सव मनाना उनको प्रसन्न करना प्रथम शासक का कर्म है आनन्द प्रिय विष्णु भगवान् शिव जी भगवान् के आने की प्रतीक्षा में आनन्द मंगल उत्साह पूर्ण उत्सव मनाते हैं, सो आजकल वसन्त के आरम्भ में हेमन्त आनन्दोत्सव मना रही है। जड़ चेतन में आजकल (वसन्त में) भारी आवेग है वृक्ष जीर्ण पर्णों को त्याग नव पल्लवित होता है। मनुष्यों के शरीरों में रक्त का विशेष संचालन होता है। नूतन अनाज तयार होता है प्रत्युत सम्पूर्ण कर्म सुखमय, रसमय, उत्कर्षाधायक होते हैं। कविजनों का यह प्रमोदवन है। वियोगियों का दव (वह्नि) वन है संयोगियों का क्रीड़ागृह (उपवन) है। सुयोगियों का जीवन धन है। कवि अपनी प्रतिभागत उत्प्रेक्षा के उदाहरण इसी समय में प्रत्यक्ष कर रहा है। वियोगियों को जो अपने इष्ट का वियोग है वह सुख का बाधक होने से विषवत् प्रतीत होता है। क्योंकि इस समय में प्रकृति के प्रत्येक

परमाणु में एक विशेष गति विद्यमान है। संयोगियों को अपने इष्ट का संयोग होने से क्रीड़ा गृह के सदृश है। लौकिकजनों की सांसारिक होता है तथा अलौकिक साधु महात्माओं को पारमार्थिक इष्ट होता है। दोनों को इस समय आनन्द है। सांसारिक जनों को क्रीड़ा के लिये उपवन रूप है। पामार्थिक महात्माओं के पारमार्थिक भावनाओं का भीं उपवन है। सुयोगियों का जीवन धन है।

आज कल के लिये 'वसन्ते भ्रमणं पथ्यम् अथवा वह्नि सेवनम्' का सिद्धान्त माना है। रक्त का शोधन होता है अतः व्यायाम भी करना उचित है। भ्रमण का व्यायाम सबसे सरल है इसीलिये कम से कम घूमना तो सायं, प्रातः चाहिये ही। अग्नि का सेवन इसलिये कि दूषित रक्त को जला कर उत्तेजना करे। रास से भी रक्त शुद्ध होता है। मनुष्य के शरीर में पृथ्वि तत्त्व का आधिक्य है अतः इसको आज कल पार्थिव संयोग भी इष्ट है। ग्रामों में खेल, कूद, कबड्डी बहुत होते हैं। इस त्योहार पर अग्नि का हवन किया जाता है। यज्ञ नाना प्रकार के हैं। इस यज्ञ में नूतन अन्न का संस्कार होता है। वायु में सुगन्धिक द्रव्य विशेष होने से जीवन में उत्कर्ष होता है। जंगलों में सुन्दर २ बूटियां जमती हैं। पुष्पों की सुन्दर छटा होती है। होली के अन्त के दिन धुरन्डी या छारन्डी होती है। इस दिन रंग डालते हैं। शरीर में पार्थिव अंश पहुंचता है क्योंकि रंग सब पृथ्वी से उत्पन्न होते हैं। देहात में पानी की पिचकारी से (जिसमें रंग या गुलाल पड़ा हो) खेलते हैं। धूल भी आपस में डालते हैं। व्रज में इन दिनों विशेष रंग मंगल रहता है। वहां हुड़ंगा होते हैं। ये विशेष शिक्षा के आदर्श हैं। स्त्री पुरुषों की सेना बन कर कृत्रिम युद्ध होते हैं जो बड़ी वीरता के शिक्षक हैं। ये जिनको वहां जाने का सौभाग्य प्राप्त हुवा है वही जानता है। विदेशों (चीन, जापान, यूरोप) में भी इन दिनों रंग रहता है।

इस समय पर मनुष्य को अपने जीवन का विचार करना चाहिये। भगवद्भजन, सत्संग, कीर्तन में भी कुछ समय प्रति दिन अवश्य लगाना चाहिये। हलका भोजन, उदर को साफ रखना चाहिये। फोड़ा, फुन्सी रक्त दोष हों तो जुलाब (चैत्र में) लेना चाहिये। प्रातः स्नान, व्यायाम् प्राणायाम नित्य करना चाहिये। वर्ष में शुभ कर्म करने का संकल्प कर लेना चाहिये। भगवान् को याद करना चाहिये।

समाप्तम्

* दर्श *

(रचयिता श्री नन्दकुमार शर्मा 'विशारद')

गणिका गयन्द गीध गौतम सुनार तार,
　　शबरी सुदामा कूं दरश दिखाइके।
फूले न समात तुम दीनबन्धु दीनानाथ,
　　करुणानिधि पतित उधारन कहाइकें॥
कल्मष कुचाळी कूर कपटी कुबुद्धि सारे,
　　हारे तिहुं कालन के आगे मम आइकें।
तारी कै हारी अब भारी हमारी मानि,
　　लुक्का चोरी नाहिं कहूं सब कं सुनाइकें॥

श्री अरविन्द घोष

जीवन की तीन अवस्थाएं हैं। पहली साधारण अवस्था दूसरी साधन की अवस्था और तीसरी सिद्धि की अवस्था साधारण अवस्था में, मनुष्य चेष्टा करके ही सब कुछ करना चाहता है। वासना ही उसके जीवन की मूल शक्ति है। वह अपने मनमाने कामों में ही मस्त रहना चाहता है साधना की अवस्था में सारी वासनाएं छोड़ कर चलना पड़ता है। इसी को संयम कहते हैं। किन्तु इस बातका स्मरण रखना चाहिये कि यह संयम निग्रह (बंधन) नहीं है। विधि के अनुसार निग्रह नीति का ही अवलम्बन करके बैठ जाते हैं। पर यह ठीक नहीं वासना की तरंगों के आघातों से जिसमें मानस विचलित न हो जाय, इसके लिये तपस्या करना ही संयम है। चित्त स्थिर हो जाने पर वासनाओं की जगह भगवान् की इच्छा का ही उदय होजाता है। सिद्धावस्था में वासना और चेष्टा का एकदम नाश हो जाता है, अपने आप ही शुद्ध कर्म प्रकट होता है। उस समय तो साधक बिलकुल ही भगवान् का यंत्र हो जाता है।

× × × ×

साधक क्या करेगा और क्या न करेगा आदि आज्ञाओं का निश्चय कर देने से ही मनुष्य को लंगड़ा बनजाना पड़ता है। क्योंकि यह सोचने की बात है कि जो कुछ करना होगा उसकी मार्मिक बात हम दूसरे से कहेंगे क्योंकर ? अपने भीतर से जिस काम की प्रेरणा होती है, वही सत्य कर्म। स्वप्न में भूलकर भी किसी के कर्म में बाधा उपस्थित न करो। बाधा-रहित कर्म-क्षेत्र पाकर साधक अपने आप ही बहुत शीघ्र वासनाओं और प्रेरणा मूलक कर्मों का लक्षण निश्चय करके सत्य निर्देश समझ जाय, यह बिलकुल निश्चित है।

× × × ×

आसक्ति का त्याग करना पड़ेगा, न कि भोग का विषयके त्याग करने से होगा ही क्या ? चित्त में जिस वस्तु की प्रेरणा उपस्थित होती है, वह भी तो ऊपर से ही उभर कर आती है। विवाह करोगे, या नहीं करोगे, इस विषय में द्वन्द्व काहेका ? सब लोग उन्हीं की इच्छा पर निर्भर करते हैं। उनकी इच्छा क्या है, यह बात यदि तुम अच्छी तरह नहीं समझ सकते, तो फिर तुम अन्धे हो, अन्धे होकर फिर एक आदमी का पथ निश्चय करने का दुस्साहस करना क्या तुम अपने आप नहीं समझ सकते कि क्या है ? अन्धा कभी मार्ग निश्चय नहीं कर सकता। बुद्धि के साथ भगवान् की इच्छा का मिलान हुए बिना, किसी भी कर्म करने का अधिकार नहीं रहता। जो लोग बिना भगवान् की इच्छा जाने कर्म करते हैं। उनके सब कर्म संस्कार सृष्टि के कारण होते हैं। भगवान् की कृपा से जो मार्ग दिखाई पड़ता है, वही मार्ग सच्चा होता है, किन्तु उस मार्ग का दिखाई पड़ना सिद्ध जीवन में ही

सम्भव होता है। सिद्ध जीवन और कुछ नहीं है। उनके साथ योग-युक्त होकर उन्हीं की प्रीति के लिये सब काम करना ही सिद्ध जीवन है।

× × × ×

यह देखना चाहिये कि आदेश किस स्थान से आता है, बुद्धि पर से आता है या चित पर से हृदय से आता है या प्राण से ? ऊपर का सत्य कई तरह का होता है जैसे आदेश करने वाला सत्य, सम्भवनीय सत्य यथार्थ सत्य। किसी समय यह भी होता है कि हमने आदेश ठीक पाया है किन्तु देश-काल और पात्र के संस्थान और सन्निवेश के सम्बन्ध में, मन की सारी सम्भावनाओं और कल्पनाओं को अपने वश में कर लेने के बाद। ऐसा करने की भी आवश्यकता पड़ती है। भूल का भय करने से काम नहीं चलता। सब कुछ ऊपर से ही संशोधित होता है। अतएव मस्तिष्क को सदैव सजग रखना चाहिये। उसे मनके स्वभाव में न मिला कर ज्ञान द्वारा सत्य में पहुंचा देना तथा उसे पूर्ण और उदार भाव से प्राप्त कर ऊपर उठाने की ओर ही हमारा लक्ष्य है। पर यह ध्यान रहे कि नीचे की सारी इन्द्रियों को उस ज्ञान में स्थित करने से ही यह काम होता है। इसीसे इसकी ओर भी हमारा लक्ष्य है। इसके लिये पूर्ण स्वतंत्र, विशाल शुद्ध बुद्धि का भाव होना चाहिये इस विज्ञान में सब समान भाव से संग्रह करते जाना चाहिये।

× × × ×

प्राण, अपनी आत्मा के ज्ञान के लिये अपने ही कर्म और प्रेरणा से ठीक ज्ञान के ऊपर के स्थापित हो सकता है। किन्तु औरों की आत्माओं का भी अपने भीतर अनुभव करना चाहिये। इतनी ही नहीं, विश्व के सत्य, सबके सत्य और स्फुटीकरण के सत्य का एक से अनुभव करना चाहिये। यदि दूसरे लोग इसमें असमर्थ हो जावें, तो उनकी सहायता करनी चाहिये।

× × × ×

पहले आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, तत्पश्चात् अर्द्ध प्रकृति या परा प्रकृति का रहस्य समझने में तन्मय होना चाहिये। मन रूपी क्षेत्र में शक्ति का संचार होने से ही इस परा प्रकृति के रहस्य का ज्ञान होता है।।

× × × ×

हमारा लक्ष्य है मानस मस्तिष्क को भी छोड़कर एकबार विज्ञान तक पहुंचने की और इसी विज्ञान को देवी-मानस या अर्द्ध-प्रकृति का मस्तिष्क (Davine mind or supermental Knowledge) कहते हैं। क्योंकि वहां पहुंचने से ही जीवन होता है। केवल देह ही का अन्तर्ज्ञान हो जाने से कुछ नहीं हो सकता। अर्द्ध प्रकृति की जानकारी होने की भी आवश्यकता है।

इसके लिये आवश्यकता है, स्थूलता विस्तीर्ण एवं महान् प्रकाश की सरलता या निर्मलता की मन के भीतर जो ऊपर से प्रकाश आरहा है, यह मन के आते ही लोप हुआ जा रहा है किन्तु इस जगह हड़बड़ और कड़ाई से पकड़ना ठीक नहीं है। इसका कारण उस पर कड़ाई करने से उल्टी हानि पहुंचती है।.........जो लोग इस प्रकार हठ करके दृढ़ता पूर्वक सत्य को पकड़ना चाहते हैं, वे भारी भूल करते हैं। शुद्ध हृदय से सत्य को पकड़ना चाहिये। इसके लिये मनका द्वार सदैव खुला रहना चाहिये। मन का द्वार खुला रहने से ही नये

नये सत्यों का प्रकाश बिना विघ्न-बाधा के सरलता और सुगमता से भीतर प्रवेश कर सकता है। किन्तु इसका भी ध्यान रहे कि खुला द्वार केवल सत्य का प्रकाश पहुंचाने के लिहे ही रहे औरों के प्रवेश के लिये नहीं। इसी तरह से सत्य की ओर झुका करके उसी के महान उदार प्रकाश में चलना चाहिये।

सतियों का सतित्व

[ले०-श्री बी० एल० सराफ]

विजय और स्वातन्त्र्य की जय घोषिनी वह रक्तरंजित ध्वजा भारतवर्ष के राष्ट्रीय मन्दिर पर केवल मेवाड़ ने नहीं फहराई, महाराज शिवाजी और गुरु गोबिन्द की धर्म-रक्षिणी तलवारें भी उस महा मन्त्र से दीक्षित थीं। यद्यपि रंग नवीन था, स्फूर्ति समयोद्भुत थी, पर आत्मा प्रणवीर त्यागी प्रताप की थी। उस रक्त-ध्वजा और शक्ति-शालिनी कृपाणधारी भुजाओं में सात्विकता की सुगन्धि भले न आवे, पर सेवा व्रत के निर्वाह के लिये, प्रेम के पवित्र दर्शनों और संसार को बन्धनों से उन्मुक्त करने के लिये बलिदान भी एक पुनीत कार्य है, भयंकर होने पर भी सात्विक है। अशांति की रक्त-सरिताओं से शान्ति तथा स्वातंत्र्य के जन्म के लिये राष्ट्र की वेदी पर आत्म समर्पण सचमुच एक उत्कृष्ट बलिदान है।

पर तुम्हारे ध्येय में, तुम्हारे त्याग और बलिदान में स्वतंत्र्य-प्रेमी के वैचित्र्य से भी कहीं अधिक विलक्षणता मालूम होती है। विलक्षणता बड़ी सुहावनी है। ध्येय संकुचित प्रतीत होता है, क्योंकि बलिदान बहुत कुछ तुम अपने लिये ही करती हो। किन्तु अपने लिये भी स्वार्थ साधन के नाम पर भी ऐसा सात्विक बलिदान! ऐसी सांसारिक सुखों की तिलांजलि!! और वह तिलांजलि भी ऐसे अनन्त, किन्तु अज्ञात सुख के लिये, जिसका मिलना भी निश्चित नहीं। केवल विश्वास पर ही अवलंबित है, और यदि कभी मिल भी जाय, तो उसके नाम और अनुभव की भी चेतना नहीं रहेगी। इससे बढ़कर और क्या विलक्षणता और कौन इतनी अधिक मधुर पहेलिका हो सकती है।

तुम्हारे हृदय में फलों और फूलों के आभूषणों से अवनत विनम्र लताओं का हृदयग्राही शील है। पर बलिदान को कलुषित करने वाली ऐहिक सुख भोग की लालसा तुम्हारे मुख पर

नहीं। गृहिणी का घमंड भी तुम्हारे नेत्रों में नहीं। तुम्हारी उदासी में भी कमनीय गंभीरता है। तुम्हारे कार्य में तुम्हारी पोशाक में शिष्टता के आडम्बर में छिपा हुआ छल नहीं। तुम्हारा हृदय संसार की दर्शनीय बाह्य दृश्य में मुग्ध नहीं, वह प्राकृतिक होकर भी प्रकृति की आमोद-लहरों में विहार नहीं करता।

तुम्हारे हृदय में स्वामी के लिये प्रेम है, पर स्वामी के स्वरूप के लिये नहीं, उनके गुणों के लिये नहीं, उनके प्रेम के लिये नहीं उनके ज्ञान के लिये भी नहीं, उनके हृदय मन्दिर में विराजने वाले देवके लिये ही तुम्हारा प्रेम है, जो न केवल साध्य ही है, किन्तु जिनसे बढ़कर जाति को सुलभ्य साधन भी नहीं। अनन्त के साथ अनन्त सम्बन्ध के लिये ही तुम्हारा प्रेम है। उसकी सेवा में अर्पण करने के लिये तुम्हारे विशद हृदय ने यह भावांजलि सजा रक्खी है।

तुम्हारे पतिदेव का स्वरूप, उनका स्वभाव, उनके सद्गुण उस हृदय की अधिष्ठात्री विशद मूर्ति के ही आविर्भूत गुण हैं। सचमुच तुम उस अधिष्ठात्री मूर्ति की ही पूजक हो। पर त्यागी भक्त और मोक्ष मार्गावलम्बी का प्रेम भी कहां है? उसकी भक्ति को ग्रहण करने वाला कौन है? विश्व प्रेम भी उस आत्मा की, उस ज्योति की मनुष्य मात्र में पहचान के सिवा और क्या है? तुम्हें संसार से मोह नहीं, क्योंकि तुम्हारा संसार विश्व प्रेम पूर्ण है। तुम्हारा जगत् तुम्हारे पूज्य देवमय है। उनके दर्शन का उन्माद तुम्हारे अंग अंग में भरा है। तुम सज्ञान दशा में होते हुये भी योग निद्रा में उन्मत्त रहा करती हो। तुम्हारे उदार भावों में पवित्रता का रुचिर उल्लास है। परिष्कृत आनन्द का अविरल किन्तु प्रशान्त प्रवाह है। हे देवी जिस दिन तुम्हारा सात्विक सतीत्व विश्व की हमारी जैसी दीन, दुर्बल, कलुषित और पतित आत्माओं की नम्र चिनती का उत्तर-अश्रुओं से भरी पुष्पांजली का उत्तर-अपने त्याग-निष्ठ शब्दों में आत्म बलिदान के भाव से पुनीत हुए शब्दों में न देगा, उस दिन इस भारत की आध्यात्मिकता का मन्दिर हिल जायगा। लज्जा और अवसाद पूर्ण खिन्न माता अपना सिर झुका भारतीयों से और भारतीय सभ्यता से सदा के लिये विदा मांग जायगी।

पर तुम्हारे इस सतीत्व को हम क्या कहें? तुम्हीं बताओ, इस विश्व में यह सतीत्व क्या है? हमारे ध्यान में पतिदेव के पावन हृदय में अपने अस्तित्व को भुला कर विराजने वाले विश्व को पवित्र करने का यह एक रसायन है। स्त्री जाति की देवियों के आसन पर बिठलाने वाली एक शक्ति है। दुर्बल तथा अकर्मण्य आत्माओं को कर्म भूमि में अवतीर्ण कराने वाले 'भृगण' और चन्द का वीर शब्द है। दुश्चरित्रता की वैतरणी में निमग्न विश्व में मुंह छिपाने वालों के लिये पतित पावनी गंगा है। हंसते हंसते निःस्वार्थ आत्म उत्सर्ग की आभा से वलैयर्या धकार को तिरोहित करने वाला गीता का कर्म योगी संगीत है। मृतकों में जीवन संचार कर उन्हें खड़ा कर देने वाली संजीवनी है। आत्मा की अमरता को प्रमाणीभूत करने वाला सन्देह वेदान्त है। सप्तर्षियों में अक्षय स्थान दिलाने वाला अरुन्धती का आभूषण है। जगद्धात्री आदि शक्ति का गुणोत्कर्ष है। ब्रह्म की शोभा बढ़ाने और प्रकृति पर वेदान्तियों द्वारा लगाये गये लांछन के मिटने को स्वर्गीय व्रत है। सरस्वती, महालक्ष्मी तथा महाकाली की विभूतियों का मूर्तिमान् सामंजस्य है। ज्ञान, आत्मा, और शक्ति का

पुनीत निकेतन है। देवी, इस कारण ही तुम अर्धांगिनी बनाई गई। वीरों की ही नहीं, राजाओं की ही नहीं गरीबों की ही नहीं, किन्तु परब्रह्म की पूर्ण कलाओं की प्रति मूर्ति, योगी कृष्ण की और मर्यादा पुरुषोत्तम रामकी भी। सतीत्व से बढ़कर तुम्हारा और कौनसा मोक्ष है? उसके सिवा तुम्हारा स्वर्ग और कहां है? मनुष्य का स्वर्ग तो दूसरे लोक में है, पर देविशो, तुम्हारा स्वर्ग तुम्हारे साथ है, और तुम्हारा ही है। जिस दिन तुमने समझा, उसी समय से उसकी खोज में तुम्हें तीर्थ यात्रा करने की आवश्यक्ता नहीं। व्रत और उपवास करने की भी आवश्यका नहीं सभ्यता भिमानी संसार हमें तुमसे बढ़कर क्या देने का गर्व कर सकता है?

पर हम बहुत विचित्र हैं। हमारे आमोद का, हमारे अस्तित्व का आदर्श भी वैसा ही विचित्र है। आनन्द निर्झरिणी में स्नान कर बाहर निकलने पर भी हम वैसे ही विचित्र बने रहते हैं। हम स्वर्गीय विनोद चाहने पर भी बलिदान करने में असमर्थ हैं। तुम्हारे निःस्वार्थ-त्याग और उत्कृष्ट बलिदान को देख कर हम अपने कायरता और मानव जाति की क्षुद्रता का अनुभव करने लगते हैं। तुम्हारी प्रशंसा में हृदय से अनवरत जयकार की हर्ष ध्वनी निकलने लगती है। आनन्द के आंसू अन्त में हमें सचमुच ही रुला देते हैं। जिस प्रेम-क्षेत्र का विस्तार सारा विश्व हो, और जहां हृदय मिलने के लिये बलिदान, आवश्यकीय होने पर भी नहीं किया जाय, वह विश्व-प्रेम मृग-जल है।

तुम्हारा विश्व-विजयी बलिदान खून की नदियां बहाए बिना ही संसार में शान्ति का साम्राज्य स्थापित करने का पर्याप्त है। यदि तुम सत्यवान को लौटा सकीं, तो कोई आश्चर्य नहीं। मृत्यु पर तुम्हारे सतीत्व ने एक अपूर्व विजय पाई। मदन-दहन करने वाले, घोर तपस्या में निरत, भस्मधारी यति का भी यदि तुम व्रत भंग कर उसे गृहस्थाश्रम में खींच ला सकीं, तो कोई आश्चर्य नहीं। तुम्हारे सतित्व की ज्वाला में यदि लंकापुरी का गौरव भस्मी भूत हो गया तो कोई आश्चर्य नहीं। सतीत्व की आन पर यदि माधवी देवी ने तुम्हारे चिरशयन के लिये विवर शय्या दान की तो कोई आश्चर्य नहीं। यदि तुम्हारे लिये मर्यादा पुरुषोत्तम एक साधारण पुरुष की तरह रोने लगे, तो कोई आश्चर्य नहीं। आराध्यदेव के अपमान मात्र पर मृत्यु को निमन्त्रण तुम्हीं दे सकती हो। देवि किरणमयि! तुम्हारे सतीत्व की तलवार ने यदि चक्रवर्ती का हृदय पवित्र कर दिया यदि उसे भी रुला दिया तो कोई आश्चर्य नहीं। जौहर की अग्नि ने यदि आक्रमणकारी सिद्धान्त धारियों के साम्राज्य भस्म कर दिए, तो कोई अचम्भा नहीं। यदि तुम्हारी पूजा और रक्षा में निरत आत्म-समर्पण करने वाला प्रणवीर प्रताप अमर हो गया, तो कोई आश्चर्य नहीं। सारा विश्व छान डाला, पर ज्ञान यह हुआ कि इस भारतवर्ष को ही तुम्हें जन्म देने का गौरव है। सिद्धांत अपने ऐहिक रूप में तो दिगंत व्यापी है, किन्तु उसे देवी रूप में उद्घाटन भारत ने ही किया। हे देवी, हे शस्य-श्यामला माता, तुम जन्म के बहन अपने गौरव के लिये नहीं चाहती, किन्तु चाहती हो इस पतित संसार को स्वार्थवाद से ऊपर उठाने के लिये। तुम्हारे त्याग से वास्तव में सारा संसार पवित्र हो जायगा। तुम्हारा जन्म संसार में होमर की मधुर गाथा नहीं वरन एक आवश्यकता है। सामाजिक बन्धनों में तुम्हारा सतीत्व ही शान्ति ला सकता है।

हमारे मानव जीवन को भी यदि किसी योग्य बनाना है, तो अपने आत्म-समर्पण, वैराग्य और शान्ति के उत्कट प्रवाह को इसके ऊपर भी बहा देना, ताकि इसकी सारी कुत्सितता पवित्र हो जाय, जिससे वह तुम्हारी उदारता और आत्म-त्याग का पावन गीत गा सकें, और अन्त में विश्व-संगीत में उसगीत की ध्वनि को और अपने को निमग्न करदे।

जब तक तुम यहां जन्म लेती रहोगी, तब तक माता अपने को विश्व-धात्री और जगत् जयित्री ही कहेगी चाहे उसका सारा सौंदर्य और वैभव लुप्त हो जाय। महर्षि वेदव्यास का आधा महाभारत तुम्हारा ही है, उसमें विहार करने वाली तुम्हीं हो। महर्षि वेदव्यास ने तुम्हारे सतीत्व-माहात्म्य के गाने को ही आर्य सभ्यता की पराकाष्ठा की विभूति दी है। मनु भगवान ने भी तुम्हारा पूजन करने की आज्ञा दे दी। राजस्थान! प्यारे वीर राजस्थान!! महाराणा प्रताप के राजस्थान!!! बतलाओ, किनके चरणों में यह श्रद्धा और भक्ति की पुष्पांजलि अर्पण कर दूं। बतलादो, किसके चरणों में यह गर्वोन्नत सिर भक्ति पूर्वक झुका दूं। पद्मिनी के या तारा देवी के हाड़ी रानी के या आरंधा के, किरणमयी के या?

भजन

[संग्रहकर्त्ता—श्री केशवदेवजी ब्रह्मचारी "आश्रम"]

रघुवर तेरो ही दास कहाऊं ॥ टेक ॥
तुमरो ही नाम जपूं निशि वासर,
तुमरे ही गुण गाऊं ॥
तुम ही मेरे प्राण जीवन धन,
तुम तज अन्त न जाऊं ॥
तुमरे चरण कमल को मधुकर,
रतन हरि सुख पाऊं ॥

२

मैं तुमरी शरणागत प्यारे।
परमानन्द मुकुन्द परातम,
दीनानाथ सकल भय टारे ॥
दामोदर अच्युत अघ नाशन,
पाप हरन तव नाम मुरारे ॥
व्यापक एक अखण्ड अगोचर,
नाम न रूप प्रकाशन वारे ॥
दास गुलाब बसो चित हमरे,
चार पदार्थ याही में सभारे ॥

३

घन श्याम भारत वर्ष में आप का अवतार हो।
देव गण मंगल करें भक्तों को हर्ष अपार हो ॥टेक॥
दूर हो पाखण्ड सारे और दूर अत्याचार हो।
भर पूर हों तव भक्तिसे सुख शान्ति का सञ्चार हो
घोर संकट में पड़े हैं दीन जन प्रभु आपके।
हो कृपा अब नाथ ऐसी हम दीनों का उद्धार हो ॥

दो अभय का दान प्रभुवर हों अभय सेवक तेरे।
चहुँ ओर भारत वर्ष में तन भक्ति का प्रचार हो॥

४

चार वर्ण में सोई बड़ा जिन राधा कृष्ण रटा रटा॥
काहे को जोड़े माल खजाने,
क्यों चुनवावत ऊंची अटा।
यम की तलबी जब आवेगी,
छोड़ जाय सब लटा पटा॥
यहां आया तू कौल करार कर,
यहां फिरता तू नटा नटा।
यह दम हीरा लाल अमोलक,
पल में जाता घटा घटा॥
जब हंसा चल्यो जात है,
छोड़ जाय तू रटा पटा।
अपने कुटुम्ब को ऐसे देखे,
पलक उठाये पटा पटा॥ ३॥
यह संसार मतलब का गरजी,
गरजी बातों करता झूठा मिठा।
चन्द्र सखी भज बाल कृष्ण छवि,
कानन कुण्डल मुकट जटा॥

५

हरि हर लीजे मम सन्ताप॥ टेक॥
काम कपट के दृढ़ बन्धन से होते हैं निशदिन पाप॥
कैसे काटूं इन बन्धन को विधि बतलावो आप॥
क्रिया से विहीन तर्क से पूर्ण करूं न पूजा न जाप॥
बल हीन प्रतिज्ञा भंगी वातूनी बे नाप॥
मन के भ्रम से मैं भटकत करता हुवा विलाप॥
पतित पथिक तन पथ से भगवन् यही घोर सन्ताप
बन्धु मित्र इष्ट वर मेरे हो तुम मां बाप॥
नाथ अनाथ जान के बालक वेगि हरो भवताप
अभय सबल संयमी हो जीवन मिटे कली की छाप॥
नाथ मुरारी शरण तिहारी हो निज प्रेम की थाप॥

६

जागो बंशी वारे मोहन जागो मेरे प्यारे॥टेक॥
रजनी बिति भोर भयो है, घर घर खुले किवारे॥
गोपी दही मथत सुनियत हैं, कंगना के झनकारे॥
उठो लाल जी भोर भयो है सुन नर ठाड़े द्वारे॥
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल, जय २ शब्द उचारे॥
माखन रोटी हाथ में लीनी, गऊ अनके रखवारे॥
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, शरण आया को तारे॥

७

हो श्याम कन्हैया कलैया मोरी छोड़दे।
कारी चूरी कर सारी सारी तुम रे श्याम।
ऐसी रीति कीनी कठिन मरोड़दे॥
हम ब्रजनारी प्राण न प्यारी तुम पर वारी श्याम।
छोड़ कलाई दे गलबांई कितवन नैन जोड़दे॥
रास करन को हम सब आई कृष्ण तुम्हारे पास॥
आशा पूरण करो हमारी हम तुम नैनन जोड़ दे॥

८

भक्त हेत अवतार धरूं मैं॥ टेक॥
कर्म धर्म के मैं वश नाहि,
योग यज्ञ मन में न धरूं मैं॥ १॥
भावे आधीन रहूं इन सबके,
जाहां भाव तहा ते न टरूं मैं॥ २॥
दीन गुहार सुनों श्रवण न भार,
जहां भक्त तहां तेन टरूं मैं॥ ३॥
ब्रह्म कोटि आदि तौ व्यापक,
सबको सुख दे दुःख हरूं मैं॥ ४॥
सूर श्याम प्रभु ऐसे भाखे,
जहां भाव तहां ते न टरूं मैं॥ ५॥

REG DNo. .L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।=)
३.	गीता मूल (मोटा टाइप)	मूल्य नित्य पाठ	
४.	वेदोपनिषद्		।=)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	।)
६.	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	।।)
७.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	,,	=।)
८.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	,,	=)
९.	सत्य शब्द संग्रह	,,	॥-)
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	,,	।।)
११.	शब्द सार संग्रह	,,	।)
१२.	शब्दसंग्रह	,,	।।)
१३.	सारसंग्रह	,,	।)
१४.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	=)
१५.	मनुस्मृति सार	,,	॥)
१६.	भक्ति चिन्तामणि	,,	।=)
१७.	भगवद्भक्तांक	,,	॥=)
१८.	भगवदंक	,,	॥)
१९.	गवांक	,,	।)
२०.	महात्मांक	,,	।)

नोट:-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पता:-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।